INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF INDIA

ISSN 2454-8707 VOLUME-II,ISSUE-III, NOV-2016

रंग और वर्ण

डॉ० चंचला कुमारी
अिसस्टेंट प्रोफेसर समाज शास्त्र विभाग एस.डी. कॉलेज परैया गया, बिहार (भारत)

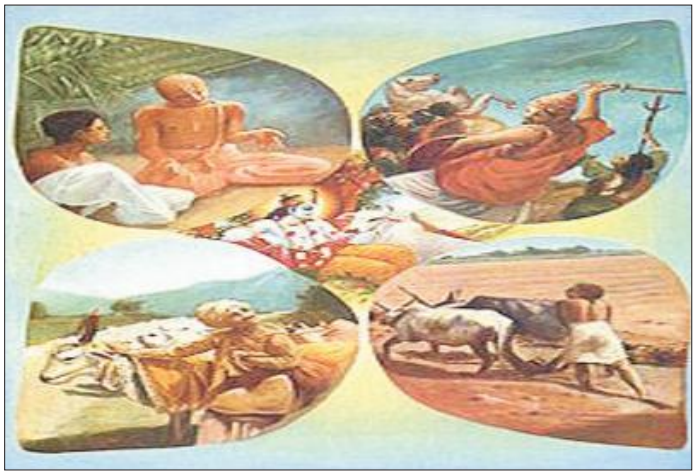

अट्ठारहवीं शताब्दी से एशिया और अफ्रीका के देशों पर पाश्चात्य देशों के आधिपत्य इतिहास लेखन को प्रभावित किया है। शासक देशों के बुद्धिजीवियों के शासित देशों में बहुत अनुयायी हैं। पाश्चात्य समाज में वर्ग की अपेक्षा नस्ल को अधिक महत्व दिया जाता है। इसीलिए कहा गया है कि प्राचीन भारत में वर्णभेद का जन्म इसलिए कहा गया है कि प्राचीन भारत में वर्णभेद का जन्म इसलिए हुआ कि विदेश से आये हुये श्वेत लोग भारत के मूल अधिवासी कृष्णकाय लोगों से घृणा करते थे। इस प्रकार की भ्रान्ति का प्राबल्य इसी से समझा जा सकता है कि डॉ0 दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी बड़े भरोसे के साथ लिखते हैं –''जाति के लिए प्रयुक्त शब्द का अर्थ रंग है। ऋग्वेद में मुनष्यों कें दो ही वर्ण हैं – आर्यों का वर्ण और उनके विरोधी दासों का। परन्तु बाद में दास का अर्थ गुलाम है बल्कि यह शुद्र वर्ण का भी बोधक है जो साधारणतः जन्म पर आधारित ऐसे लोगों का वर्ण है जो उपनयन के योग नहीं, जो धर्म शास्त्रों के पठन से वंचित है, शस्त्र धारण नहीं कर सकते न सम्पत्ति के अधिकारी है, जिनका कर्तव्य तीन आर्य वर्णों की सेवा हैं।''[1] भारत में यदि दो ही वर्ण होते तो हम मान सकते थे कि एक श्वेतकाय लोगों का है और दूसरा कृष्णकाय लोगों का परन्तु कोसम्बीजी जानते हैं कि वर्ण चार हैं। इसलिए उन्होंने और भी लिखा कि ''पुनर्गठित आर्यों का अ याजक और अ–योध्या अंश निम्न स्थिति में गिर गया जिसे वैश्य वर्ण कहा गया। वर्णों का आभ्यन्तीय विकास बाह्य का अनिवार्य परिणाम हैम्।''[2] इस प्रकार के तर्क की दुर्बलता स्पष्ट है। यदि श्रम विभाजन या पेशों के आधार पर बाँटकर समाज पुरोहितों, योद्धाओं और अयोध्याओं (कृषकों और व्यापारियों) के तीन वर्ण बन सकता था तो चौथा क्यों लिए वही वही वह अनुपयुक्त क्यों मान लिया गया ?

समाज –विभाजन का मूलाधार

नस्लवादियों की तरह कोसम्बीजी भी इस बात की उपेक्षा करते है। कि प्राचीन विश्व के अनेक देशों में समाज विभक्त रहा है और उस विभाजन का कारण नस्ल कदापि नहीं था। नस्लवादी मतों पर भरोसा रखते हुए भी डा0 जी एस0 घुरे के ध्यान में यह बात आयी है पिरामीड के युग में मिस्र के समाज में भूमिपति, भूमिदास और क्रीतदास ये तीन वर्ग थे और अट्ठारहवें राजवंश के समय पुरहित, योद्धा, कारीगर और भूमिदास चार वर्ग थे। सुमेरिया के समाज में तीन वर्ग थे – (1) पुराहित और अधिकारी (2) भूमिपति और (3) क्रीतदास जिनके कानूनी सम्बन्ध असमानता पर आधारित थे। ईरान में भी चार वर्ग थे –पुरोहित, योध्या, पशुपालक और कारीगर, जिनकी उत्पत्ति कुछ लोग यिम से, कुछ जरथुस्त्र से बताते हैं। पुरोहिती आरंभ से ही जन्म पर आधारित थी और इन वर्गों में परम्पर विवाह मना था। चीन में चार वर्ग थे –सरकारी कर्मचारी, कृषिजीवी कारीगर और सौदागर। इनके सिवा अछूत भी थे। सरकारी कर्मचारियों को छोड़ कर सभी पेशे जन्मजात थे। नापित, अभिनेता, वेश्यालयों को चलाने वाले और शारीरिक श्रम करने वाले सरकारी नौकरी के लिए न तो प्रतियोगिता कर सकते थे, न उच्च वर्गों में विवाह कर सकते थे। दक्षिण अरब में दो तरह के अछूत थे जिनमें से एक वर्ग का मस्जिद में प्रवेश निषिद्ध था।[3] ऐसे तथ्यों से हमें डॉ0 भीमराम रामजी अम्बडेकर की बात माननी पड़ती है कि ''ऐसे हर समाज में जो एकदम आदिम नहीं है, वर्ग वर्तमान रहे हैं। जहाँ भी समाज तुलनात्मक रूप से उन्नत अवस्था में है, सारी दुनिया में समाज की यही स्वाभाविक स्थिति है।[4] ऐसा निष्कर्ष अपरिहार्य है क्योंकि आज तक किसी भी समाजशास्त्री या इतिहासकार ने इसे बाहरी वस्तुत (नस्ल) का परिणाम नहीं बताया। डॉ0 कोसम्बी अपने को मार्क्सवादी बताते थे पर उन्होंने उस बात पर ध्यान नहीं दिया जिसे अमार्क्सवादियों ने भी माना है कि विकास की एक अवस्था में पहुँच कर समाज अपने आप को विभक्त कर लेता है और उसके लिए नस्ल जैसे किसी बाहरी हस्तक्षेप या षड़यंत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। जब कोई मानव समूह खाद्य संग्रह की अवस्था से खाद्य–उत्पादन की अवस्था में पहुँचता है ''समाज को जीवित रखने के लिए आवश्यक उत्पादन के साथ–साथ'' सामाजिक अतिरिक्त उत्पाद (ब्ब्.।ै त्च्स्न्ै च्व्क्न्ब्ज्) भी प्रस्तुत होता है। '' जब गोष्ठी के पास न्यूनाधिक स्थायी खाद्य'–सामग्री जमा हो जाती है, तब उसके कुछ सदस्य अपना पर्याप्त समय ऐसी चीजें तैयार करने में लगा सकते हैं जो खाने के काम की नहीं हैं जैसे औजार, गहने और खाद्य रखने के बर्तन)''5 इस प्रकार विशिष्टीकरण आरंभ होता है और समाज पेशों के आधार पर बने वर्गों में बँट जाता है।

वर्ण का अर्थ

क्याव जैसा कोसम्बी मानते है' वर्ण' का अर्थ रंग होता है ? समाज के विभाग के लिए प्रयुक्त 'वर्ण' शब्द का अर्थ मेरे मत में रंग नहीं हो सकता। जिन शब्दों के एकाधिक अर्थ होते हैं, उनका अर्थ प्रकरण के अनुसार ही करना चाहिये। जैसे 'सैन्धव' शब्द का अर्थ घोड़ा होता है, नमक भी। परन्तु प्रसंग यदि कहीं जाने का हो तो घोड़ा पेश किया जाएगा और कोई खाने बैठा हो तो नमक ही देंगे। अन्यथा करना हास्यपद होगा। वर्ण' का अर्थ यदि रंग लेना हो तो उसे चुणादिगण की उभयपदी वर्ण–धातु से बना मानना पड़ेगा। उक्त धातु का अर्थ रंगना है कि परन्तु उनके उसके अर्थ भी है। यथा व्याख्या करना, प्रशंसा करना, भेजना, पीसना।[6] वर्णन शब्द भी इसी धातु से बना है अतः मानव समूह के लिए प्रयुक्त 'वर्ण' शब्द का अर्थ ' विवरण' या 'विभाग' भी हो सकता है। सत्य तो यही है कि विजेता कभी भी अपनी रंग भेद या नस्ल भेद की भावना को छिपाते नहीं। यदि वर्ण भेद, रंग या नस्ल के अन्तर पर टिका होता तो प्राचीन भारत के सभी शास्त्रकार पर इस पर चुप्पी साधे कैसे रह सकते थे ? यास्क के निरूक्त (2/1/4) में कहा गया है वर्णो वृणोतेः (वर्ण वृणोति से बना है)। इसका अर्थ यह है कि 'वर्ण' शब्दचुणादिगण की 'वर्ण' धातु से नहीं, भ्यादिगण की 'वृ' धातु से बना है जिसका अर्थ 'चुनना' होता है।[7] अतः 'वर्ण' का अर्थ रंग नहीं, 'जीवन की चुनी हुई स्थिति ' है। 'वर्ण' से जुड़े संस्कृत के दो शब्द वर्णलिंगी और वर्णी ध्यान देने योग्य हैं। दोनों का प्रयोग ब्रह्मचारी के लिए होता है। इसी अर्थ में ये शब्द क्रमशः किरातार्जुनयम् (1/1) और कुमार सम्भवम् (5/65) में प्रयुक्त हैं। इन दोनों अर्थ अपने वर्ण के विशेष चिह्नों को धारणा करने वाले ही हो सकता है। मनुस्मृति (2/41–46) में विभिन्न वर्णों के ब्रह्मचारी के लिए निर्दिष्ट विशेष चिह्नों का विवरण दिया है। यदि वर्ण रंग पर आधारित होगा तो लोग यों ही देख कर जान लेते कि कौन किस वर्ण की ब्रह्मचारी है, अलग–अलग चिह्न निर्दिष्ट करने की आवश्यकता ही न पड़ती। डॉ0 अम्बेडकर ने ऋग्वेद के बाईस स्थलों में प्रयुक्त 'वर्ण' शब्द के बारे में छानबीन करके सासक्ष्य को ''सर्वथा अनिश्चित'' पाया है।[8] फिर उन्होंने जेन्दअवेस्ता को देखा। वहाँ यह शब्द 'वरण' या 'वरेण' रूप में मिलता है। इसके बारे में उनका निष्कर्ष है –''मूलतः इसका अर्थ एक विशेष विश्वास का पोषक वर्ग था और इसका रंग से कोई सम्बन्ध नहीं ।''[9]

वर्ण परिवर्तन

शरीर का रंग मनुष्य जन्म से पाता है और वह जीवन भर अपरिवर्तित रहता है। कोई कृष्णकाय व्यक्ति कभी श्वेतकाय नहीं हो सकता, न श्वेतकाय कृष्णकाय हो सकता है। परन्तु सिद्धान्त और व्यवहार में वर्ण परिवर्तनीय था, इसके प्रमाण बहुत उथल–पुथल के बाद भी हमारी परम्परा में उपलब्ध है। मनुस्मृति 10/65 का कहना है।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्रह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च।।

(शुद्र ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण शुद्धद्र हो जाता है। क्षेत्रिय सन्तान भी ऐसी ही होती है और इसी प्रकार वैश्वय की सन्तान के बारे में भी जानो।) आपस्तम्ब के धर्मसूत्र (1/5/10–11) में भी कहा गया है कि धर्म से लोग उच्च वर्ण में जाते हैं और अधर्म से निम्न वर्ण में गिरते हैं। गौतम धर्मसूत्र (4/22) में एक विधान है जिसे साधारणतः मिश्र विवाह से उत्पन्न सन्तान के बारे में प्रयोज्य माना जाता है। इसका प्रचलित अर्थ यह था कि मिश्र वाक्य से उत्पन्न सन्तान पाँचवी या सातवीं पीढ़ी में उच्चतर या निम्नतर वर्ण में पहुँच जाती है। वर्णान्तर गमनपकर्षोत्कर्षाभ्यां प चमेन सप्तेन वाचार्या (शब्दशः अनुवाद–आचार्यगण अपर्कष और उत्कर्ष से दूसरे वर्ण में जाना पंचम या सप्तम से मानते हैं) ऐसा ही एक बचपन याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय में मिलता है – जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पंचमे सप्तमे पि वा (जाति में ऊपर उठना पाँचवें या सातवें युग में जानना)। 'युग' का अर्थ साधारण : लोग पीढ़ी मान लेते है। प्रचलित मत के विपरीत डॉ0 के0एल0 दफ्तारी का कहना है कि शास्त्रकारों के ऐसे वचन मिश्र विवाह की सन्तान के लिए नहीं, बल्कि साधारण सरूप से वर्ण परिवर्तन के बारे में हैं। उनके मत में 'युग' का अर्थ पीढ़ी नहीं चार वर्षो की अवधि है। वे कहते हैं कि प्राचीनकाल में लोग सत्रहवें से अटठाइसवें वर्ष के बीच एक वर्ण से दूसरे वर्ण में जा सकते थे।[10] श्रीमद्भागवत पुरान का भी यही कहना है कि जिसमें जिस वर्ण के गुण हों उसे उसी वर्ण में स्थान देना चाहिये (8/11/25)। इस प्रकार के नियम पुस्तकों तक सीमित नहीं थे, वास्तव में उनका पालन होता था। महाभारत के आदिपर्व में मनु के कई वंशजों के क्षत्रिय से ब्राह्मण हो जाने की सूचना दी गयी है। (75/12–15)। शल्यपर्व में (39/37–37) आर्ष्टिषेण, सिन्धुदीप, देवापि और विश्वामित्र के क्षत्रीय कुल में जन्म लेकर भी ब्राह्मण बन जाने का उल्लेख है। अनुशासन पर्व के तीसवें अध्याय में बताया गया है कि राजा वीतिहव्य ने शत्रु राजा प्रतर्दन के भय से भुगु के आश्रम में शरण ली और भृगु ने उसे ब्राह्मण बना लिया और उसके वंशधर वेदों में पारंगत ब्राह्मण हुये। हरिवंश पुराण के अनुसार बालेय ब्राह्मण क्षत्रिय राजा बलि के वंशज हैं। (31/1984–1985)। कण्व का पुत्र मेधतिथि क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर काण्वायन ब्राह्मणों का जन्मदाता बना (32/1718)। इसी प्रकार मौद्गल्य और मैत्रायण ब्राह्मण भी क्षत्रियों के कुल से उत्पन्न हैं। (32/1781, 1789, 1790)। विष्णु पुराण के अनुसार अंगिरा जन्म से क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण बन गये। (4/2/2)। नाभाग, मनु का वंशज क्षत्रिय होकर भी वैश्य बन गया। (4/1/15)। शक, यवन, कम्बोज, पारद और पह्लव क्षत्रिय होकर भी सगर के शासन–काल में पतित होकर म्लेच्छ बन गये (4/3/18–21)। भागवत पुराण के अनुसार ऋषभ के 100 पुत्रों में इक्यासी ब्राह्मण हो गये। (5/4/13) । धृष्ट मनु का पुत्र था पर उसके वंशज ब्राह्मण हो गये (9/2/16)। गर्ग का जन्म भारत के वंश में हुआ था। उसके वंशजों में से कुछ ब्राह्मण हो गये। इसी प्रकार क्षत्रिय करूष के वंशज ब्राह्मण हो गये। (9/12/16)। वायुपुराण के अनुसार विश्वामित्र, मान्धाता, संस्कृति, कपि, पुरूष्कुत्स, सत्य, अनूहवान, ऋभु, कक्षीव, आर्ष्टिषेण, अजमीढ, स्थीतर, विष्णुवद्ध आदि क्षत्रिय थे जो तपस्या के बल से ब्राह्मण हो गये (अध्याय 91, श्लोक 115–117)।

वर्णों की उत्पत्ति

रंग अथवा नस्ल के आधार पर भेदभाव और घृणा का बर्ताव करने वाले अपने विचारों के लिए कभी लज्जित नहीं होते। इसलिए अपनी भावनाओं को छिपाने की आवश्यकता भी उन्हें कभी प्रतीत नहीं होती। प्राचीनकाल में यहूदी समरिया के लोगों के हाथ का पानी तक नहीं पीते थे और उनकी यह भावना के दर्शन हमें बाइबिल के कई स्थलों में होते हैं। इस युग में भी यूरोप और अमेरिका में रंग या नस्ल के कारण घृणा करने वाले अपनी भावना खुल कर प्रगट करते हैं। अतएव वर्णों की उत्पत्ति में ऐसा कोई कारण होता तो हमारे प्राचीन साहित्य से उसका अवश्य ही पता चलता।

वर्णों की उत्पत्ति के बारे में प्राचीनम सन्दर्भ हमें पुरूष सूक्त में मिलता है। (ऋग्वेद 10/90/12, शुक्ल यजुर्वेद 31/11)। म्यूर ने इसका अनुवाद यों किया है – ''ब्राह्मण उसका मुख था, राजन्य को उसकी भुजाएँ बताया गया, वैश्य उसकी जाँघें था, शूद्र का जन्म उसके पैरों से हुआ।'' इसका अर्थ हृदयंगम करने के लिये पूर्ववर्ती मंत्र पर ध्यान देना आवश्यक है जिसका अनुवाद म्यूर ने यों किया है –''जब देवों ने पुरूष को विभक्त किया, तब उन्होंने उसके कितने भाग किये ? उसका मुख क्या था ? भुजाएँ क्या थी (उसकी) ? उसकी जांघे और पैर कौन सी दो चीजें थी ?'' (ऋ 10/90/11, शुक्ल यजु. 31/10)।[11] म्यूर का अनुवाद संतोषजनक नहीं है परन्तु इसमें भी नस्ल या रंग का कोई संकेत नहीं हैं। ''कौन दो चीजें उसकी जाँघे और पैर थी?'' इस प्रकार का उत्तर यही होना चाहिये कि ''वैश्व उसकी जाँघे और शूद्र उनके पैर।'' शरीर का भार पैर भी सम्भालते रहते हैं और चलने–फिरने में सहायक होते हैं अतएव पैरों से तुलना करना अनादर सूचक नहीं समझना चाहिये। परन्तु मान भी लें कि ''शूद्र का जन्म उसके पैरों से हुआ'' तो भी ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नहीं कि विराट् पुरूष के अन्य सभी अंग गोरे थे और उसके पैरों का रंग काला था। वेदों में कई ऐसे मन्त्र हैं जिनमें शरीर के सभी अंगों को अक्षत रखकर दीर्घजीवन की प्रार्थना की गयी है। जो बात मानव–शरीर के बारे में लागू होती है वही समाज शरीर के बारे में भी खरी उतरी है। वेदों में चारों वर्णों के लिये प्रिय होने की प्रार्थनाएँ मिलती हैं (शुक्ल यजुर्वेद) 8/48; अथर्ववेद 19/32/8, 19/62/1। यदि शूद्र सचमुच श्वेतकाय आगनतुकों द्वारा विजितु घृणापात्र, अश्वेत होते तो उनके प्रीतिपात्र होने की प्रार्थना करने का प्रश्न ही न उठता। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में शुद्र को वैश्य की बराबरी में रखा गया है –'' उसने उन्नीस से स्तुति की शुद्र और अर्थ (वैश्य) का जन्म हुआ; दिन और रात्रि शासक थे। (14/28, म्यूर का अनुवाद)। शतपथ ब्राह्मण हमें यह विश्वास दिलाना चाहता है कि हर परवर्ती वर्ण अपने पूववर्ती वर्ण की तुलना में समाज के लिए अधिक उपयोगी है। ''पहले ब्रह्मण अकेला था। अकेला होने से उसकी वृद्धि नहीं हो रही थी। उसने उत्साहपूर्वक एक उत्तम आकार, क्षत्र उत्पन्न किया। ..... उसकी वृद्धि नहीं हुई। (तब) उसने शूद्र वर्ण बनाया।'' (शतपथ ब्राह्मण, 14/4/2/23 म्यूर का अनुवाद)। बृहदारण्यक उपनिषद (1/4/10–14) में भी ऐसा ही कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् दोनों के मत में शूद्र के पहले नहीं, शूद्र के बाद धर्म उत्पन्न हुआ। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि पहले या बाद में उत्पन्न होने का कोई विशेष सामाजिक महत्त्व है। परवर्ती ग्रन्थों के विपरीत इन दोनों में शूद्र वर्ण की तुलना पूषा और पृथ्वी से करके उसे सबका पोष क बताया गया है। इन प्रमाणों से सहज ही यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि आदम समाज जिसे 'ब्राह्म' कहा गया है, अविभक्त था। बाद में समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं से वह विभक्त हो गया और चार वर्ण बने। महाभारत के शान्तिपर्व (188/10) में कहा गया है।

न विशेषो स्ति वर्णानां सर्व ब्राह्ममिंद जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वणातां गतम्।।

(वर्णों में यह अन्तर नहीं है। ब्रह्मा ने पहले यह सारा जगत् ब्रह्ममय बनाया, फिर कर्मों से वर्णों में बँट गया।) पुनः कहा गया है : ब्राह्मणेम्यो शेषाः वर्णाः प्रादुर्भूताः (शान्तिपर्व, 342/21)। पद्यपुराण, (38/44) इसका समर्थन करता है :

ससर्ज ब्राह्मणानग्रे सृष्ट्यादौ स चतुर्मुखः।
सर्वे वर्णाः पृथक् पश्चात् तेषां वंशेषु जज्ञिरे।।

(सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने पहले ब्राह्मणों को बनाया बाद में उनके वंशों में अलग–अलग सभी वर्ण उत्पन्न हुये)। वायु और भागवत जैसे दूसरे पुराण भी यह कह कर इससे सहमति जताते हैं कि हपले एक ही वर्ण था। पुराणों की वंशावलियों में इस बात के स्पष्ट और विशेष प्रमाण मिलते हैं कि एक ही व्यक्ति की सन्तान कालान्तर में चार वर्णों में बँट गयी। वत्समुनि, भृगमुनि और शौनक के वंशजों के बारे में हरिवंश पुराण हमें ऐसी ही सूचना प्रदान करता है। (29/1517–1519)। सभी वर्ण आदि आदिम अविभक्त समूह से ही निकले हैं अथवा जैसा कि पूर्वोद्धृत ग्रन्थ कहते हैं कि शेष सभी वर्ण ब्राह्मण वर्ण से निकले हैं तो यह कहने का कोई आधार ही नहीं रह जाता कि अन्य वर्ण ब्राह्मण से नस्ल या रंग में भिन्न थे।

रंग–विचार और भारत

अब एक ही बात विचारणीय यह जाती है कि क्या भारत में प्राचीनकाल में नस्ल या रंग विषयक भेद–बुद्धि विद्यमान थी ? इसका उत्तर डॉ0 अम्बेडकर से लेना अच्छा होगा क्योंकि वे रूढ़िवादी नहीं थे और उन्होंने जो कुछ लिखा पाश्चात्य विद्वानों के अनुवादों पर निर्भर करके लिखा। यह बात हम जानते ही हैं कि पाश्चात्य विद्वान् भारत में रंगभेद और नस्लवाद के पोषक कुछ प्रमाण पाते तो चूकनेवाले नहीं थे। फिर भी अंबेडकर जिस निष्कर्ष पर पहुँचे वह अकाट्य है। वे लिखते हैं : ''ऋग्वेद (1/117/8) में इसका उल्लेख है कि अश्विनौ ने यज्ञ श्याव और रूशती का विवाह कराय। श्याव काला था और रुशती गोरी। ऋग्वेद (1/117/8) में अश्विद्वय की स्तुति उस वन्दना की रक्षा करने के लिए की गयी है जो सुनहले रंग का था। ऋग्वेद (2/3/9) में एक ऐसा पुत्र होने के लिए प्रार्थना की गयी है जो कतिपय गुणों से युक्त होने के साथ–साथ पिशंगकाय (ताम्रवर्ण शरीर वाला) हो। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि वैदकि आर्यो में रंग–विचार नहीं था। होता भी कैसे ? उनके शरीर के रंग में विविधवता थी। कुछ ताम्रवर्ण थे, कुछ श्वेताकाय, कुछ कृष्णकाय।''[12] रंग–विचार का अभाव बृहदारण्यक उपनिषद् (6/4/94) से भी सूचित होता है कि जहाँ यह कहा गया है कि जो यह चाहे कि उसका पुत्र कृष्णकाय, लाल नेत्रों वाला, तीन वेदों में पारंगत हो वह पत्नी के साथ घी–भात खावे। काले रंग से चिढ़ने वाले कभी भी काले रंग का पुत्र नहीं चाहते, फिर वह कितना ही गुणी या विद्वान क्यों न हों। अम्बेडकर कहते हैं कि ऋग्वेद के ऋषियों में कण्व और दीर्घतमा काले थे। विष्णु के अवतार के रूप में पूजित राम काले हैं यद्यपि उनके भाई गोरे बताये गये हैं। महाभारत में अर्जुन का रंग काला है। यद्यपि उनके भाई गोरे हैं। इसी महाकाव्य में दो व्यक्ति 'कृष्ण' नाम के हैं। कृष्ण का अर्थ काला होता है। दो में से एक कृष्ण तो वसुदेव के पुत्र हैं जिन्हें विष्णु का अवतार बताया गया है। दूसरे कृष्ण, द्वीप में जन्म लेने के कारण द्वैपायन और वेदों का प्रवचन करने के कारण व्यास मुनि कहे जाते हैं। दोनों हिन्दुओं के श्रद्धा भाजन हैं। रंग–भेद बरतने वाले किसी भी देश में किसी काले रंग के व्यक्ति को देवता के आसन पर नहीं बिठाया गया। फिर भारत में ही ऐसा कैसे सम्भव हुआ ? संस्कृत काव्यशास्त्र के कुछ टीकाकारों ने विष्णु, राम, कृष्ण आदि के काले रंग के बारे में लिखा है कि काला रंग पुरूषोचित्त सामर्थ्य का प्रतीक है। (द्रष्टव्य साहित्य दर्पण, 3/186) पर शालिग्राम शास्त्री की टिप्पणी)। यह भी ध्यान देने की बात है कि उत्तर में हरियाणा से लेकर बंगलादेश तक लोकोगीतों में एक विशेषता सर्वत्र समान रूप से मिलती है, वह यह है किनायक सर्वदा काला होता है जबकि नायिका गोरी होती है। यदि इसे पक्षपात ही कहना चाहें तो पुरूष–प्रधान समाज में यह काली नस्ल के प्रति पक्षपात कहा जायेगा। ऐसे तर्कों से निरुत्तर होकर कुछ लोग यह कहते है कि विवाह के लिए लोग साधारणतः गोरी लड़कियाँ ढूँढते हैं। समाचार–पत्रों में प्रकाशित विवाह –विषयक विज्ञापनों से यह बात प्रमाणित भी है। प्रश्न है कि क्या यह पक्षपात नहीं है ? उत्तर में निवेदन है कि यदि बात काले रंग से चिढ़ की ,

विद्वेष की होती तो कोई भी गोरी लड़की काले रंग के पुरूष से विवाह न करती और कभी काली लड़कियाँ अविवाहित रह जाती। स्थिति ऐसा नहीं है। चूंकि ब्राह्मणों में भी काले रंग के और शूद्रों में भी गोरे रंग के लोग मिलते हैं, इसलिए पाश्चात्य मत यह है कि पश्चिम से आये गोरे रंग के आर्यों ने काले आदिवासियों की कन्याओं से विवाह किया। परन्तु काले रंग के लोगों से चिढ़ने वाले समाज में ऐसा होना स्वाभाविक और अनुमोदित है ? जनतंत्र का दम भरने वाले यूरोप और अमेरिका के देशों का अनुभव क्या बताता है? भिन्न नस्लों में विवाह वहाँ अब भी अपवाद ही है और कृष्णांगों को सताना, मार कर डालना अब भी बंद नहीं हुआ है।

विद्वेष और पसन्द दोनों को एक समझना ठीक नहीं। विद्वेष के मूल में घृणा हेाती है, पसन्द मन के झुकाव का फल है। अच्छा कहें या बुरा, भारत ने काले रंग को पुरूषोचित्त गुणों से और गोरे रंग को नारी सुलभ कोमलता से जोड़ा। यह भावना वैदिक अग्नि और सेाम के जोड़ों की याद दिलाती है। देश के अन्तर्मन में जड़ी इस-पतीकात्मकता के कारण विवाह के अवसर पर गोरी लड़की अधिक पसंद की जाती है।

यह सच है कि प्रायः दो सौ वर्षों के श्वेतांग शासन ने शिक्षितों के एक अंक को प्रभावित किया है और थी। अतः हम कह सकते है कि वर्ण–व्यवस्था के मूल में उन्हें काले लोगों से घृणा करना सिखाया है। परन्तु भारत कोई बाहरी कारण (रंग–विद्वेष या नस्ल विद्वेष) नहीं था। मैं जब वर्णों का जन्म हुआ उस समय स्थिति ऐनी नहीं।